पाणिनीय व्याकरण तन्त्र की कोडिंग, डिकोडिंग, एल्गोरिद्म एवं मिसाइल प्रणाली तथा पिन पॉइंट टारगेट

[प्रो. नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी)
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

पाणिनि की ***'अष्टाध्यायी'*** केवल एक भाषाविज्ञान का ग्रन्थ नहीं है, बल्कि यह **विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक सुव्यवस्थित कोडेड व्याकरण प्रणाली** है। इसमें वर्णित नियम केवल भाषा को संरचित नहीं करते, अपितु यह प्रणाली आज के युग के अल्गोरिद्म (algorithm), कोडिंग-डिकोडिंग, तथा सुनिश्चित लक्ष्य प्रणाली (missile system) जैसी सटीकता से कार्य करती है। हर शब्द को बनाने के लिए जैसे **एक सुनिश्चित लक्ष्य तक पहुँचने वाला निर्देशपथ** होना चाहिए, पाणिनीय प्रणाली ठीक उसी प्रकार की —विना किसी भ्रम, विना किसी 'crash' वाली प्रणाली है।

१. पूर्णता और त्रुटिरहित नियमों की व्यवस्था

पाणिनि द्वारा निर्धारित लगभग ४,००० सूत्रों में कोई द्वन्द्व, अस्पष्टता या परस्पर-विरोध नहीं है। प्रत्येक सूत्र किसी न किसी विशिष्ट भाषा-विन्यास को निर्मित करने के लिए नियत है।

■ जहाँ नियमों में टकराव (बाध्य-बाधक भाव) की सम्भावना होती है, वहाँ पाणिनि स्वयं परिभाषा सूत्रों के माध्यम से इसका समाधान प्रदान करते हैं। उदाहरण:— **'विप्रतिषेधे परं कार्यम्'**[१]।

■ यह व्याकरण प्रणाली किसी भी चरण पर 'फेल' नहीं होती—कोई syntax error या ambiguity नहीं।

■ जैसे एक त्रुटिरहित कम्प्यूटर प्रोग्राम चलता है, वैसे ही यह व्याकरण निर्बाध रूप से कार्य करता है।

■ ये नियम पूर्णता के साथ संक्षिप्त भी हों, इसके लिए वे अधिकार, अनुवृत्ति और विशिष्ट संज्ञाओं (code words) आदि का उपयोग करते हैं।

■ अपने सूत्रों/नियमों के अर्थ को स्पष्ट करने की व्यवस्था भी वे अपने सूत्रों में स्वयं करते हैं; इन्हें परिभाषा सूत्र कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'अधिकार' का निर्देश वे सूत्र में **'स्वरित-चिह्न'** देकर करते हैं; जिसका निर्देश वे **'स्वरितेनाधिकारः'**[२] इस परिभाषा सूत्र द्वारा करते हैं। अष्टाध्यायी बहुत समय तक मौखिक परम्परा में ही सुरक्षित रही और बाद में लिपिबद्ध की गई। इसलिए प्रायः यह पता लगाना बहुत ही कठिन हो जाता है कि स्वरितचिह्न कहाँ अभिप्रेत थे। इसीलिए अधिकारों का निर्णय प्रायः टीकाओं और अन्य परवर्त्ती व्याकरण ग्रन्थों के स्पष्टीकरणों से ही होता है। बहुत से स्थलों पर पाणिनि स्वयं ही अधिकार का संकेत कर देते हैं, जैसे; **'आ कडारादेका संज्ञा'**, यह सूत्र स्वयं ही प्रकृत सूत्र (१.४.१) से लेकर

---

१. द्र०—अष्टाध्यायी १.४.२॥

२. द्र०—अष्टाध्यायी १.३.११॥

'कडाराः कर्मधारये' (२.२.३८) तक एकसंज्ञा अधिकार का निर्देश करता है। इसी प्रकार **'प्राग्वहतेष्ठक्'** (४.४.१) इस सूत्र का अधिकार **'आवसथात् ष्ठल्'** (४.४.७४) सूत्र तक जाता है, इसका निर्देश अधिकार सूत्र में ही दे दिया गया है।

सूत्रार्थ में किस विभक्ति के प्रयोग से क्या अर्थ ग्रहण किया जाए, इसका निर्देश वे **'तस्मादित्युत्तरस्य'**[३] , **'षष्ठी स्थानेयोगा'**[४] , **'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य'**[५] जैसे परिभाषा सूत्रों से करते हैं। पाणिनि के इस व्याकरण-तन्त्र में संज्ञा सूत्र और परिभाषा सूत्र दिग्दर्शक का काम करते हैं। ये सूत्र प्रायः प्रथम अध्याय में ही संगृहीत हैं; यद्यपि कुछ महत्त्वपूर्ण संज्ञाएँ और परिभाषाएँ अन्यत्र भी हैं । प्रथम अध्याय को संज्ञाधिकार कहा जाता है। शब्द निर्माण में इन्हें चालक-गुच्छ (controlling domain) माना जा सकता है। तृतीय से पञ्चम अध्याय तक प्रत्ययों का अधिकार है[६], जिसमें प्रवेश पाए विना अष्टाध्यायी से किसी भी भाषिक रूप की सिद्धि हो ही नहीं सकती। इसे हम अनिवार्यगुच्छ (obligatory domain) कह सकते हैं । सूत्र-संख्या ६.४.१ से ७वें अध्याय की समाप्ति तक [७] और ८.१.१६ से ८.३.५५ तक क्रमशः अङ्ग और पद संज्ञक हैं[८]। इस प्रकार अष्टाध्यायी में प्रमुख ७९ अधिकार सूत्रों का प्रयोग हुआ है। 'अनुवृत्ति' अपने बाद आने वाले सूत्र का अर्थ पूर्ण करने में सहायक होती है। इसका क्षेत्र 'अधिकार सूत्र' की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। अनुवृत्ति वाले सूत्रों की संख्या बहुत अधिक है। दैनिक वाग्व्यवहार में जिस प्रकार से एक संदर्भ - विशेष में संवाद आरम्भ होने पर पूर्व वाक्य के कुछ भाग की अनुवृत्ति स्वतः चली आती है और संवाद को सुस्पष्ट, सशक्त तथा प्रभावी बनाती है; उसी प्रकार सूत्रों में अनुवृत्ति का व्यवहार होता है। उदाहरण के लिए **'भोजनशाला' का सन्दर्भ/अधिकार** है—

वक्ता (भोजन करनेवाला) — मुझे **भोजन** दीजिए।

भोजन परोसने वाला — लीजिए। [भोजन शब्द की अनुवृत्ति वक्ता के वाक्य से आ गई]

वक्ता — रोटी। ['मुझे' और 'दीजिए' शब्दों की अनुवृत्ति वक्ता के पूर्व वाक्य से आ गई]

भोजन परोसने वाला — लीजिए। [रोटी शब्द की अनुवृत्ति वक्ता के वाक्य से आ गई]

वक्ता — खीर। ['मुझे' और 'दीजिए' शब्दों की अनुवृत्ति वक्ता के पूर्व वाक्य से आ गई]

भोजन परोसने वाला — लीजिए। [खीर शब्द की अनुवृत्ति वक्ता के वाक्य से आ गई]

वक्ता — पानी। [मुझे और दीजिए शब्दों की अनुवृत्ति वक्ता के पूर्व वाक्य से आ गई]

३. द्र०—अष्टा० १.१.६५ ॥
४. द्र०—अष्टा० १.१.४८ ॥
५. द्र०—अष्टा० १.१.६६ ॥
६. अष्टा० ३.१.१ से ५.४.१६० तक।
७. द्र०—'पदस्य' (८.१.१६) से 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' (८.३.५५) तक ॥
८. 'अङ्गस्य' (६.४.१) से 'ई च गणः' (७.४.९६)

भोजन परोसने वाला — लीजिए। [पानी शब्द की अनुवृत्ति वक्ता के वाक्य से आ गई]

इसी प्रकार यह अनुवृत्ति की प्रक्रिया भोजन करने के अन्त तक चलती रहती है। कल्पना कीजिए यदि उपर्युक्त संवाद में हर बार पूरा वाक्य बोला जाए तो यह संवाद कितना कृत्रिम, कर्णकटु और प्रभावहीन बन जाएगा। अधिकार तथा अनुवृत्ति की इस विधा का ही पाणिनि के सम्पूर्ण व्याकरण तन्त्र में प्रयोग हुआ है, जिससे प्रत्येक नियम/सूत्र स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण ढंग से अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।

2. Coding and Decoding:

प्रत्याहार सूत्र और अनुबन्ध

पाणिनि की विशिष्टता केवल नियमों में नहीं, अपितु उसकी संकेत प्रणाली (coding system) में भी है—जिसे 'प्रत्याहार-सूत्र' अथवा 'माहेश्वर-सूत्र' कहा जाता है।

■ इन सूत्रों में अकारादि को 'इत्-संज्ञक' सूक्ष्म चिह्नों, जिन्हें 'अनुबन्ध' कहते हैं; के माध्यम से संकेतित किया गया है, जो केवल कोड-उच्चारण में ही काम आते हैं, प्रक्रिया में इनका लोप हो जाता है[९]; परन्तु नियमों/सूत्रों को परिभाषित करने में इनका प्रयोजन बना रहता है। मात्र १४ प्रत्याहार सूत्रों में से वे प्रथम वर्ण को उसी अथवा बाद में आनेवाले किसी अन्य सूत्र के अन्त्य इत्-संज्ञक वर्ण (अनुबन्ध) से जोड़ कर अपने व्याकरण-तन्त्र में प्रयुज्यमान ४२ कोड तैयार करते हैं। इसकी विधि का निर्देश '**आदिरन्त्येन सहेता**'[१०] सूत्र द्वारा वे स्वयं करते हैं। अनुबन्धों की कार्यविधि को वे 'इत्-संज्ञा-प्रकरण' के ७ सूत्रों में स्पष्ट करते हैं।[११] जिनका कार्यक्षेत्र पाणिनीय तन्त्र के अङ्ग-उपाङ्गों तक फैला हुआ है।[१२]

■ यह एक प्रकार की meta-language है, जिसमें भाषा के नियमों को अत्यल्प शब्दों में व्यक्त किया गया है। संक्षिप्तता इसकी अन्यतम विशेषता है। अधिकार अनुवृत्ति की चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। अनुबन्ध भी संक्षिप्तता में अपना विशेष योगदान करते हैं। वे एक ही अनुबन्ध का एक-साथ उपयोग अनेक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए करते हैं। उदाहरण के लिए—

गर्ग + यञ् = गार्ग्यः। यहाँ '**गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः**' इस अर्थ में 'गर्ग' प्रातिपदिक से 'यञ्' प्रत्यय[१२] हुआ। यञ् प्रत्यय ञित् है। यहाँ ञित् अनुबन्ध के कारण दो कार्य सिद्ध किए गए हैं — १. गर्ग प्रातिपदिक के आदि अच् को वृद्धि[१३] —गार्ग + य। गार्ग के अन्त्य अकार का लोप होकर — गार्ग् + य =गार्ग्य।

२. इसके गार्ग् + य =गार्ग्य। ञित्-प्रत्ययान्त होने के कारण 'गार्ग्य' इस समुदाय का प्रथमस्वर उदात्त हो गया[१४] —**गार्ग्यः**।

(शेष अगले अङ्क में)

---

९. द्र०— इत्-संज्ञा-प्रकरण 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' (१.३.२) इस सूत्र से 'लशक्वतद्धिते' (१.३.८) सूत्र तक।
द्र०— ''१. धातुपाठः, २. सूत्रपाठः, ३. गणपाठः, ४. उणादिपाठः, ५. लिङ्गानुशासनम्''—
धातुसूत्रगणोणादिनामलिङ्गानुशासनम्। आगमाः प्रत्ययादेशाः उपदेशाः प्रकीर्त्तिताः॥

१०. अष्टा० १.१.७०॥

११. द्र०—अ० १.३.२-१.३.८॥

१२. द्र०—तद्धितेष्वचामादेः॥ अष्टा॰ ७.२.११७॥ (अचो ञ्णिति॥ अष्टा॰ ७.२.११५॥ इत्यनुवर्त्तते)

१३. द्र०—यस्येति च॥ अष्टा॰ ६.४.१४८॥

१४. द्र०—ञ्नित्यादिर्नित्यम्॥ अष्टा॰ ६.१.१९७॥

पाणिनीय व्याकरण तन्त्र की कोडिंग, डिकोडिंग, एल्गोरिद्म एवं मिसाइल प्रणाली तथा पिन पॉइंट टारगेट*

[प्रो. नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी)
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

गताङ्क का शेष—

एल्गोरिद्म तथा मिसाइल प्रणाली

गणित और कम्प्यूटर विज्ञान में, एल्गोरिद्म गणितीय रूप से कठोर निर्देशों का एक परिमित अनुक्रम होता है, जिसका उपयोग समस्याओं या गणनाओं के निष्पादन के लिए किया जाता है। पाणिनीय व्याकरण तन्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह कोड-निर्माण, सूत्रार्थ, शब्दसिद्धि कोई भी क्यों न हो; सर्वत्र इस 'एल्गोरिद्म प्रणाली' को अपनाया गया है। अनुवृत्ति, अधिकारसूत्र, परिभाषासूत्र आदि भी इसी प्रणाली के सशक्त अङ्ग हैं। परिभाषा सूत्र तो विवाद या भ्रम की स्थिति में स्वचालित न्यायाधीश के समान निर्देश करते हैं, जिससे कार्यप्रणाली कहीं भी अव्यवस्थित नहीं होने पाती और लक्ष्य-सिद्धि निर्बाध तथा सुनिश्चित हो जाती है। सीधे सरल शब्दों में ''किसी समस्या के निदान के लिए अपनाए जाने वाले निर्देश-समूह को विशिष्ट अनुक्रम में रखकर कार्य करना ही 'एल्गोरिद्म प्रणाली' है; इसका प्रयोजन सटीक और निर्भ्रम परिणाम प्राप्त करना होता है''।

पाणिनि की कोडिंग/डिकोडिंग की प्रक्रिया को हम एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। इसीके साथ किसी सूत्र के अर्थ को स्पष्ट करने में कौन-सी 'एल्गोरिद्म प्रणाली' अपनाई जाती है, उसे भी समझने का प्रयास करते हैं।

उदाहरण-सूत्र—

इको यणचि ॥[१]

इस सूत्र कि कार्यप्रणाली जानने से पूर्व प्रत्याहार के उन १४ सूत्रों को दृष्टिपथ में रखना परम आवश्यक है, जिसके विना किसी भी सूत्र को डिकोड नहीं किया जा सकता।

१. अ इ उ ण्,
२. ऋ ऌ क्,
३. ए ओ ङ्,
४. ऐ औ च्,
५. ह य व र ट्,
६. ल ण्,
७. ञ म ङ ण न म्,
८. झ भ ञ्
९. घ ढ ध ष्
१०. ज ब ग ड द श्
११. ख फ छ ठ थ च ट त व्
१२. क प य्
१३. श ष स र्
१४. ह ल्।

कोड-निर्माण में ये परम सहायक हैं। किसी भी सूत्र के किसी भी वर्ण से आरम्भ करके बाद वाले किसी इत्-संज्ञक वर्ण के साथ मिलकर एक कोड/प्रत्याहार बन जाता है। जैसे 'इको यणचि'

---

* **कोडिंग**= कूटाक्षर बनाना। **डिकोडिंग**= कूटाक्षर के रहस्य को खोलकर स्पष्ट करना। **एल्गोरिद्म**= किसी कार्य की सिद्धि के लिए अपनाए जाने वाले निर्देशों का सुनिश्चित अनुक्रम। **मिसाइल**= आत्मनिर्देशित प्रक्षेपास्त्र। **पिनपॉइंट टारगेट**= सुनिश्चित लक्ष्य का वेध करना।

१. द्र०— अष्टाध्यायी ६.१.७७॥

सूत्र में इक्, यण् तथा अच् प्रत्याहार/कोड आए हैं।

इक् = ''इउण्, ऋऌक्'' [इत्–संज्ञक ण् और क् को हटाकर] = इ, उ, ऋ, ऌ।

यण् = ''यवरट्, लण्'' [इत्–संज्ञक ट् और ण् को हटाकर] = य्, व्, र्, ल्।

(**हल्** = व्यञ्जन वर्णों में अकार सर्वत्र उच्चारण की सुविधा के लिए होता है, प्रयोग के लिए नहीं)

अच् = ''अइउण्, ऋऌक्, एओङ्, ऐऔच्'' [इत्–संज्ञक ण्, क्, ङ् और च् को हटाकर] = अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ।

'अ, इ तथा ऋ' स्वरों में इनके दीर्घ स्वरूप आ, ई तथा ॠ का ग्रहण भी ''**अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः**''[२] परिभाषा सूत्र से हो जाता है।

''**इको यणचि**'' यह सूत्र ''**संहितायाम्**''[३] इस अधिकारसूत्र के क्षेत्र में आता है। यह 'संहिता' क्या है ? इसे पाणिनि ''**परः सन्निकर्षः संहिता**''[४] सूत्र द्वारा स्पष्ट करते हैं— ''उच्चारण करते समय जब दो वर्णों का उच्चारण विना किसी काल–व्यवधान के (immediately one after another) किया जाता है, तो पूर्व और पर वर्ण की इस अति सन्निकटता को 'संहिता' कहते हैं।'' सामान्य व्यवहार में इसे ही 'सन्धि' कहा जाता है। अधिकार सूत्र को जोड़कर तथा मूलसूत्र का पदच्छेद करके सूत्र का ग्राह्य स्वरूप इस प्रकार बन जाता है—

''**इकः यण् अचि संहितायाम्**''।

पदच्छेद के पश्चात् अगला क्रम सूत्र के सभी पदों में प्रयुक्त विभक्ति की पहचान करना होता है। प्रकृत सूत्र के पदों में विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

इकः (षष्ठी एकवचन), यण् (प्रथमा एकवचन), अचि (सप्तमी एकवचन), संहितायाम् (सप्तमी एकवचन)॥

सूत्रार्थ की प्राप्ति के एल्गोरिद्म में अभी तक मूलसूत्र, अधिकार, पदच्छेद और विभक्ति–निर्णय के अनुक्रम को अपनाया गया है। सूत्र में यहाँ तीन प्रत्याहार/कोड प्रयुक्त हुए हैं — **इक्, यण्** तथा **अच्।** ये कोड प्रत्याहार की रेंज (श्रेणी/सीमा) को दर्शाते हैं—

इक् = इ, उ, ऋ, ऌ [इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ]।

यण् = य्, व्, र्, ल्।

अच् = अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ [अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ]।

कम्प्यूटर प्रणाली (HTML + Java Script) में प्रयुक्त रिजेक्स कोडिंग में भी इसी प्रकार रेंज को प्रदर्शित किया जाता है।

A-Z = A, B, C, D, E, F, G, H, I, J, K, L, M, N, O, P, Q, R, S, T, U, V, W, X, Y, Z. (Unicode Range: u0041 to u005A)

a-z = a, b, c, d, e, f, g, h, i, j, k, l, m, n, o, p, q, r, s, t, u, v, w, x, y, z. (Unicode Range: u0061 to u007A)

0-9 = 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9. (Unicode Range: u0030 to u0039)

---

२. द्र०— अष्टाध्यायी १.१.६९॥

३. द्र०— अष्टा० ६.१.७२॥

४. द्र०— अष्टा० १.४.१०९॥

अ–औ = अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऌ, ऍ, ऐ, ए, ऐ, ऑ, ओ, ओ, औ. (Unicode Range: u0905 to u0914)

क–ह = क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, ऩ, प, फ, ब, भ, म, य, र, ऱ, ल, ळ, ऴ, व, श, ष , स, ह. (Unicode Range: u0915 to u0939)

०–९ = ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९. (Unicode Range: u0966 to u096F)

''**इको यणचि**'' सूत्र का अर्थ किया जाता है — ''इक् के स्थान पर यण् आदेश हो जाता है, अच् परे रहते, संहिता/सन्धि के विषय में।''

परन्तु '**के स्थान पर**', '**आदेश**', '**परे रहते**', '**के विषय में**', '**हो जाता है**' —ये शब्द कहाँ से आ गए। इनके लिए पाणिनि ने परिभाषा सूत्रों की व्यवस्था की है, जिससे बार–बार लम्बे वाक्यों में बात न कहकर संक्षेप से कार्य किया जाए।

'**के स्थान पर**' — सूत्र में यदि षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, तो सामान्य रूप से वह 'स्थानी = के स्थान पर' का निर्देश करती है — ''**षष्ठी स्थानेयोगा**''[५] । यहाँ 'इकः' = 'इक् + ङस् = इकः' पद में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होने से 'इक् के स्थान पर' ऐसा अर्थ बन जाएगा। जब किसी सूत्र में षष्ठी विभक्ति के प्रयोजन को पहले ही कह दिया जाता है तब इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती; जैसे — ''**तद्धितेष्वचामादेः**''[६] इस सूत्र में '**अचाम्**' इस पद में प्रयुक्त षष्ठी विभक्ति का प्रयोग '**निर्धारण–षष्ठी**' के रूप में हुआ है और '**आदेः**' पद में प्रयुक्त षष्ठी विभक्ति का प्रयोग '**स्थानी–षष्ठी**' के रूप में हुआ है — '**अचाम् आदेः = अचों के मध्य में जो आदि अच्, उसके स्थान पर**'।

'**आदेश**' — दो गणों के मध्य यदि समान संख्या हो तो वे 'आदेश या आगम' यथासंख्य = यथाक्रम हो जाते हैं; ऐसा परिभाषित किया गया है — ''**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**''[७]। यहाँ आदेश अर्थ ही क्यों, आगम अर्थ क्यों नहीं ? आगमों के व्यवस्थापक परिभाषा सूत्र पाणिनि ने दे दिए हैं — टित् और कित् आगमों के लिए क्रमशः आदि और अन्त में बैठने का व्यवस्थापक सूत्र ''**आद्यन्तौ टकितौ**''[८] तथा मित् आगम के लिए ''**मिदचोऽन्त्यात्परः**''[९]। यहाँ 'यण्' किसी भी टित्–कित् या मित् अनुबन्ध से नहीं बाँधा गया, अतः यह 'आदेश' ही है।

'**परे रहते**' — विना व्यवधान के प्रसङ्ग वाली सप्तमी विभक्ति '**परसप्तमी**' होती है, अर्थात् उसके परे रहते पूर्व को कार्य होता है — ''**तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य**''[१०]। 'अच् + ङि = अचि' पद में सप्तमी विभक्ति है और सन्धि का विषय होने से विना व्यवधान के प्रसङ्ग वाली है, अतः इसका अर्थ लिया गया — 'अच् परे रहते'।

---

५. द्र०— अष्टा० १.१.४९॥
६. द्र०— अष्टा० ७.२.११७॥
७. द्र०— अष्टा० १.३.१०॥
८. द्र०— अष्टा० १.१.४६॥
९. द्र०— अष्टा० १.१.४७॥
१०. द्र०— अष्टा० १.१.६६॥

'के विषय में' — 'संहितायाम्' इस पद में भी सप्तमी विभक्ति है, यह अधिकारसूत्र में है और यहाँ यह 'विषयसप्तमी' है, अत: 'संहिता/सन्धि के विषय में' ऐसा अर्थ ग्रहण कर लिया गया।

'हो जाता है' — सूत्रात्मक शैली में 'अस्ति' या 'भवति' जैसे क्रियावाचक शब्द लुप्त रहते हैं, अर्थ में इनका अध्याहार स्वत: कर लिया जाता है।

—इस प्रकार हमने देखा कि इस सूत्र (Missile) में प्रयुक्त 'इक्', 'यण्' तथा 'अच्' इन Code को जब तक Decode न कर लिया जाए, हम इसके अर्थ तक नहीं पहुँच सकते। इस तक पहुँचने का एक पूरा एल्गोरिद्म है, जिसकी पालना आवश्यक है।

अब हम देखते हैं कि पाणिनि के Missile किस प्रकार अपने निर्धारित-लक्ष्य (pinpoint target) तक विना भटकाव के पहुँचकर कार्य करते हैं।

पिन-प्वाइंट टारगेट

इक् के स्थान पर यण् आदेश अर्थात् इ को य्, उ को व्, ऋ को र्, तथा ऌ को ल् आदेश। कब हों ?

पहली शर्त — संहितायाम् = संहिता/सन्धि करते समय अर्थात् उच्चारण करते समय पूर्व और पर में कोई व्यवधान न रहे (immediately one after another)।

दूसरी शर्त — 'इक: अचि' = उच्चारण करते समय जब इक्= इ, उ, ऋ, ऌ वर्णों के सामने कोई अच् = स्वर वर्ण विना व्यवधान के आ जाए। आओ इसकी परीक्षा करते हैं —

''यदि उद्याने मित्राणि आयान्ति अहमपि इत: तत्र एष्यामि।'' —यह उदाहरण-वाक्य हमारा संहिता-क्षेत्र/लक्ष्य है।

हमने पाणिनि के मिसाइल सिस्टम को संहिता के लिए एक्टिवेट किया। **''संहितायाम्''** अधिकार वाले सभी ३८४ सूत्र[११] लक्ष्य साधने के लिए उपस्थित हुए। परन्तु स्वत: चालित मिसाइल की भाँति अपनी-अपनी शर्तों के पूरा न होने पर ३८० सूत्र विना एक्शन किए वापस लौट गए। केवल तीन सूत्रों ने अपनी शर्तों को पहचान कर अपनी उड़ान को जारी रखा। ''इको यणचि'' ने अपने लिए तीन स्थानों पर अपने कार्य को पहचाना — **'यदि उद्याने', 'मित्राणि आयान्ति'** और **'आयान्ति अहमपि'**। इन तीनों स्थानों पर इस प्रकार सन्धिकार्य कर दिया —

यदि उद्याने = **यद्** + **इ>य्** + **उद्याने** = **यद्युद्याने।**

मित्राणि आयान्ति = **मित्राण्** + **इ>य्** + **आयान्ति** = **मित्राण्यायान्ति।**

आयान्ति अहमपि = **आयान्त्** + **इ>य्** + **अहमपि** = **आयान्त्यहमपि।**

''इको यणचि'' ने चौथे स्थान 'अहमपि इत:' को भी अपनी शर्तों के अनुसार पहचान लिया। 'इ' वर्ण के सामने कोई भी स्वर। परन्तु 'इको यणचि' मिसाइल यहाँ अपना काम करती उससे पहले ही **''अक: सवर्णे दीर्घ:''** मिसाइल अपना कार्य कर चुकी थी। क्योंकि अपवाद सूत्र

११. पाणिनि-तन्त्र में तीन स्थलों पर ''संहितायाम्'' का अधिकार आता है। प्रथम —''संहितायाम्'' (६.१.७२) सूत्र का अधिकार ''पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्'' (६.१.१५७) तक ८५ सूत्र। द्वितीय — ''संहितायाम्'' (६.३.११४) से ''सम्प्रसारणस्य'' (६.३.१३९) तक २५ सूत्र। तृतीय —''तयोर्य्वावचि संहितायाम्'' (८.२.१०८) से ''अ अ'' (८.४.६७) तक २७४ सूत्र (कुल सूत्र—३८४)॥

पहले प्रयोग में आते हैं। इसकी शर्त थी 'अक् = अ, इ, उ, ऋ, ऌ' के सामने इन्हीं का सवर्ण = समान वर्ण आजाए तो दोनों के स्थान पर एक ही दीर्घ अक्षर हो जाए। इस मिसाइल ने यह कार्य इस प्रकार कर दिया —

अहमपि इतः = अहमप् + इ+इ>ई + तः = अहमपीतः। —इस प्रकार सन्धि किए हुए जब ''इको यणचि'' ने देखा तो उसकी शर्त उसे पूरी होती दिखाई नहीं पड़ी और पहले तीन स्थानों पर ही अभीष्ट सन्धि करके वापस लौट गया।

संहिताक्षेत्र में उतरने वाला तीसरा सूत्र/मिसाइल है ''**वृद्धिरेचि**''[१२]। ''**आद्गुणः**''[१३] सूत्र के 'आत्' पद की तथा ''**एकः पूर्वपरयोः**''[१४] इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति इसमें आ रही है। ''**संहितायाम्**''[१५] इसका अधिकार भी चल रहा है। सबको मिलाकर अर्थ की दृष्टि से पूर्ण सूत्र यह बन गया —''**संहितायाम् आत् एचि पूर्वपरयोः एकः वृद्धिः**''। अर्थात् ''**संहिता/सन्धि के प्रसङ्ग में यदि अ/आ से परे एच् = ए, ओ, ऐ, औ वर्ण आजाएँ तो पूर्व-पर दोनों वर्णों के स्थान पर एक वृद्धिसंज्ञक[१६] वर्ण (ऐ, औ) हो जाएँ**''। इस मिसाइल ने 'तत्र एष्यामि' यहाँ इस प्रकार कार्य किया —

तत्र एष्यामि = तत्र् + अ+ए>ऐ + ष्यामि = तत्रैष्यामि।

इनके अतिरिक्त ''**संहितायाम्**''[१७] तथा ''**खर्**''[१८] की अनुवृत्ति वाले सूत्र ''**विसर्जनीयस्य सः**''[१९] ने भी अपनी शर्त (विसर्ग से परे खर् = ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्) को पहचान कर 'इतः तत्र' में विसर्ग को स् आदेश कर दिया —

इतः तत्र = इत + :>स् + तत्र= इतस्तत्र।

उपर्युक्त चारों सूत्रों के कृतकार्य हो जाने के पश्चात् उदाहरण-वाक्य का स्वरूप अब इस प्रकार बन गया —

''यदि उद्याने मित्राणि आयान्ति अहमपि इतः तत्र एष्यामि।'' (सन्धिरहित वाक्य)

''यद्युद्याने मित्राण्यायान्त्यहमपीतस्तत्रैष्यामि।'' (सन्धिसहित वाक्य)

पाणिनि का व्याकरणतन्त्र भाषा के क्षेत्र ''अथ शब्दानुशासनम्'' में सदैव एक्टिवेटिड रहता है। वह पहले वक्ता की आकाङ्क्षा को पहचानता है, फिर सकारात्मक संकेत मिलते ही सभी सूत्र/मिसाइल अपने-अपने कार्यक्षेत्र में प्रवेश करते हैं। जिनकी शर्तें पूरी नहीं होती वे लौट आते हैं; जैसे

१२. द्र०— अष्टा० ६.१.८८॥
१३. द्र०— अष्टा० ६.१.८७॥
१४. द्र०— अष्टा० ६.१.८४॥
१५. द्र०— अष्टा० ६.१.७२॥
१६. द्र०— ''वृद्धिरादैच्'' अष्टा० १.१.१॥
१७. द्र०— अष्टा० ८.२.१०८॥
१८. द्र०— ''खरवसानयोर्विसर्जनीयः'' अष्टा० ८.३.१५॥
१९. द्र०— अष्टा० ८.३.३४॥

ऊपर के उदाहरण में प्रवेश के उपरान्त ३८४ सूत्रों में से ३८० सूत्रों ने दूर से ही देखा कि हमारी शर्तों के अनुसार कोई लक्ष्य नहीं है, उन्होंने उड़ान तो भरी परन्तु विना एक्शन किए ही लौट गए। ''**इको यणचि**'' ने चार में से तीन को ही अपना सटीक लक्ष्य समझकर उनमें सन्धि कर दी। ''**अकः सवर्णे दीर्घः**'' की शर्तों पर एक ही पूरा उतर रहा था, अतः उसने उसी में सवर्ण दीर्घैकादेश कार्य को किया और पाणिनि के व्याकरण-तन्त्र में लौट आया। ''**वृद्धिरेचि**'' तथा ''**विसर्जनीयस्य सः**'' इन दोनों सूत्रों/मिसाइलों ने भी अपने-अपने पिन-प्वाइंटिड टारगेट को पूरा किया और अपने शिविर में लौट आए।

पाणिनि के सूत्र/मिसाइल स्वतः संचालित (ऑटो-गाइडिड) हैं। अतः कोई बाधा उत्पन्न होने पर या शर्त अधूरी रहने पर वे स्वयं ही अपनी दिशा तय करते हैं और लक्ष्य वेध करना है या लौट जाना है, इसका निर्णय भी ये मिसाइल तत्क्षण स्वतः करती हैं। उदाहरणतः —

धेनू + इमे — धेनू इमे गच्छतः।

मुनी + इमौ — मुनी इमौ पठतः।

साधू + एतौ — साधू एतौ तिष्ठतः।

इन सभी उदाहरणों में द्विवचनान्त दीर्घ ईकार/ऊकारान्त होने से ये पद 'प्रगृह्य' घोषित हैं — ''**ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्**''[२०]। मानो संहिताक्षेत्र में यह कोई घनी आबादी वाला ऐसा स्थान है, जिस पर गोलाबारी नहीं बरसाई जा सकती। एक प्रकार से 'प्रवेश-निषिद्ध' स्थान। इसीलिए इन उदाहरणों में ''**अकः सवर्णे दीर्घः**'' तथा ''**इको यणचि**'' ने उड़ान तो भरी परन्तु ''**प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्**''[२१] का 'प्रवेश-निषिद्ध' स्थान समझकर अपनी दिशा बदली और विना कार्य किए ही लौट गए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन वैज्ञानिक विधियों का उपयोग पिन-प्वाइंट टारगेट पाने के लिए आज के वैज्ञानिक कर रहे हैं, उन सबका उपयोग कम से कम संस्कृत-व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि बहुत पहले कर चुके हैं। केवल विधि-नाम का ही अन्तर है। उनका कोड-सिस्टम प्रत्याहार-सूत्रों तथा संज्ञा-सूत्रों में व्याप्त है। जिनका उपयोग पाणिनि अपने सूत्रों में पदे-पदे करते हैं। ऊपर के उदाहरणों में प्रयुक्त प्रत्येक सूत्र इसका साक्षी है। पाणिनि के अनुबन्ध बहु-आयामी हैं, एक तीर से अनेक लक्ष्यों की सिद्धि वे अपनी अनुबन्ध प्रणाली से करते हैं। इन अनुबन्धों की तुलना HTML + Java script में प्रयुक्त RexExp — *, +, ? **आदि** से कर सकते हैं जहाँ रिजेक्स में प्रयुक्त होकर ' *' = **एक बार भी नहीं या अनेक बार,** '+' = **कम से कम एकबार या अनेक बार,** ' ?' = **शून्य बार या अधिकतम एकबार का निर्देश** प्रदान करते हैं। जिससे संक्षिप्तता के साथ उचित दिशा-निर्देश दिए जाते हैं। जिस प्रकार ये RexExp कार्य का निर्देश मात्र करते हैं, परिणाम में कहीं भी उपस्थित नहीं रहते उसी प्रकार पाणिनि-तन्त्र के सभी अनुबन्धों का लोप हो जाता है[२२], वे किसी भी परिणाम में उपस्थित नहीं रहते, परन्तु कार्य में निमित्त अवश्य बनते हैं। ❖❖

२०. द्र०— अष्टा० १.१.११॥

२१. द्र०— अष्टा० ६.१.१२५॥

२२. द्र०— ''तस्य लोपः'' अष्टा० १.३.९॥